मारुति सुजुकी' ने मज़दूर को मशीन का निर्जीव पुर्ज़ा बना डाला है

शैतानीपूर्ण ढंग से, एक 'औद्योगिक विवाद' को 'आपराधिक विवाद' में बदल डाला गया

सत्यवीर सिंह

प्रतिष्ठित सामाजिक कार्यकर्त्रियों, अंजलि देशपांडे और नंदिता हस्कर ने, गुडगाँव-मानेसर स्थित, प्रख्यात कार उत्पादक कंपनी, 'मारुति सुजुकी इंडिया लिमिटेड' में, मज़दूरों की कार्य करने की दम-घोटू परिस्थितियों तथा मज़दूरों के प्रतिरोध आन्दोलन पर एक बेहतरीन पुस्तक लिखी है; "Japanese Management Indian Resistance" (जापानी प्रबंधन भारतीय प्रतिरोध), जिसमें मज़दूरों की ज़िन्दगी का एक बहुत अहम मुद्दा उठाया गया है। जापान में हमामात्सु स्थित, 'सुजुकी मोटर कारपोरेशन' के मालिक ओसामू सुजुकी, जापान के सबसे बड़े उद्योगपतियों में गिने जाते है। उनके उद्योगों में काम करने की एक विशिष्ट 'संस्कृति' है, जिसका गुणगान, हमारे देश में, टटपूंजिया वर्ग के अनेक लोग करते पाए जाते हैं; "यहां भी, मज़दूरों के काम करने का 'जापानी कल्चर' चाहिए"!! क्या है, वह, जादुई जापानी संस्कृति?

इस संस्कृति का मूल मन्त्र है; 'चाहे जो हो जाए, उत्पादन लागत लगातार घटती रहनी चाहिए'!!'मारुति कार', हमारे देश का इतना लोकप्रिय प्रोडक्ट है कि जाने कितनी शादियां इसकी वजह से संपन्न होने से रह जाती हैं और जाने कितनी ना होने वाली, हो जाती हैं!! मारुति कार कारखाना, गुड़गांव के उद्योग विहार में 1982 में लगा था। उस वक़्त 'मारुति' नाम से भारत सरकार की हिस्सेदारी 50 प्रतिशत से ज्यादा थी, और सुजुकी छोटा साझेदार था। उस वक़्त भी, लेकिन, मज़दूरों के काम की परिस्थितियों के बारे में, सुजुकी कंपनी की ही चलती थी। खाए-अघाए, मध्य वर्ग का एक संवेदनहीन तबक़ा तो काम की 'जापानी संस्कृति' का, बगैर उसे ठीक से जाने ही, मुरीद रहा है।

मारुति कंपनी के दो शुरुआती प्रमुखों, वी कृष्णामूर्ति और आर सी भार्गव को, सुजुकी कंपनी ने, तथाकथित जापानी संस्कृति जानने के लिए, जापान में अपने कारखाने में बुलाया था। उन्होंने वहां देखा कि गर्मी के दिनों में भी दफ़्तर में एसी बंद था और सभी लोग पसीने में तरबतर थे। गुड़गांव के कारखाने में भी, सुजुकी कंपनी, उत्पादन की प्रक्रिया में माल को, एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए कन्वेयर बेल्ट के इस्तेमाल के ख़िलाफ़ थी। उनका कहना था कि उसकी जगह, मज़दूरों को, सामान ट्राली में भरकर, धकेल कर ले जाना सस्ता पड़ेगा, क्योंकि भारत में श्रम बहुत सस्ता है। भारतीय प्रतिनिधिमंडल के यह कहने पर कि यह तो मंजूर नहीं होगा, भले क़रार ही क्यों ना टूट जाए, सुजुकी कन्वेयर बेल्ट के लिए राज़ी हुई थी। इतना ही नहीं, कृष्णामूर्ति ने अपनी किताब में लिखा है कि और कई स्वचालित यंत्र, सुजुकी की हठधर्मिता की वजह से ही नहीं लग पाए। यहाँ तक कि प्लांट में, उत्पादन प्रक्रिया में बनने वाली, ज़हरीली गैसों की रोकथाम की व्यवस्था करने को भी सुजुकी कंपनी ने मना कर दिया था। भारतीय मज़दूरों के स्वास्थ्य पर, सुजुकी कंपनी, ये 'फ़िज़ूल ख़र्च' करने को तैयार नहीं थी।

साथ ही, अपनी तकनीक भी मुफ़्त में भारत को नहीं देना चाहती थी।

2002 के बाद तो, सुजुकी, बड़ा हिस्सेदार बन गइ। 'जापानी संस्कृति' के अनुरूप उनका नारा है, 'मज़दूरों की उत्पादकता का 100 फीसदी दोहन'। मज़दूरों की उत्पादकता और मालिकों के मुनाफ़े (बेशी मूल्य) की वृद्धि का आलम ये है, कि सन 2000 में, वार्षिक उत्पादन 4,00,000 कारों से भी आगे निकल गया था। इसका मतलब, हर मज़दूर, साल में औसत 107 कारें बना रहा था, जो 1988 में तय हुई उत्पादकता का 2.5 गुना था। आज तो, मारुति सुजुकी के गुड़गांव और मानेसर स्थित दोनों कारखानों की क्षमता, साल में 15,00,000 कारें बनाने की है। 'मज़दूरों की उत्पादकत के 100 प्रतिशत दोहन' का मतलब हुआ, हर मज़दूर, साल में औसत 400 से अधिक कारें बना रहा है। सुजुकी कंपनी, शुरुआत में, काम के 8 घंटे के दिन के लिए ही राज़ी नहीं हो रही थी, लेकिन जब उसे बताया गया कि इस मामले में आपने ज्यादा होशियारी दिखाई तो हंगामा हो जाएगा!! तब वे राज़ी हुए, लेकिन कहा कि 8 घंटे में से 1 सेकंड भी 'बरबाद' नहीं होने दी जाएगी. मतलब क्या किया जाएगा? जवाब आया कि 8 घंटे, उस वक़्त से नहीं गिने जाएँगे, जब मज़दूर, हाज़री रजिस्टर में दस्तख़त करता है, या अपना कार्ड पंच करता है, बल्कि उस वक़्त से गिने जाएँगे, जब, वह अपने काम की जगह पहुंचकर, काम के लिए मुस्तैद खड़ा हो जाता है।

इतना ही नहीं, सुजुकी कंपनी ने मज़दूरों के लंच का टाइम कम करना चाहा, लेकिन उन्हें बताया गया कि लंच टाइम 8 घंटे में नहीं गिना जाता। तब वे माने, फिर चाय-ब्रेक के टाइम को कम करने पर अड़ गए। कंपनी में 15-15 मिनट के चाय-नाश्ता, पेशाब, शौच के 2 ब्रेक हुआ करते थे, जिन्हें 7.5 मिनट का कर दिया गया. 7.5 मिनट में मज़दूर को ये काम करने होते हैं- 'हूटर बजते ही, 7.5 मिनट की गिनती शुरू हो जाती है. "हाथ में जो काम है उसे पूरा करो, सभी औज़ारों को उनके नियत स्थान पर रखो, अपना हेलमेट, दस्ताने और एप्री (कपड़ा) उतारो और नियत स्थान पर रखो, चाय के स्थान पर पहुंचो, जो कम से कम 25 क़दम दूर है, अपना लॉकर खोल कर चाय का गिलास निकालो, 30-35 लोगों के साथ लाइन में लगो, चाय, समोसा, ब्रेड पकोड़ा अथवा सैंडविच लो, अगर जल्दी खा गए तो दूसरा भी उठा सकते है। चाय-नाश्ते के लिए गिलास की ही अनुमति है, प्लेट नहीं ले सकते, कहीं कोई एक साथ दो समोसे ना उठा ले!! हाथ में चाय-समोसा लिए-लिए, पेशाब के लिए जाओ, जो 20-25 क़दम दूर है, पेशाब-शौच से निवृत्त होकर, हाथ और गिलास धोओ, उन्हें अपने लॉकर में रखो, अपने काम की जगह पहुंचो, औज़ार निकालो, एप्री पहनो और काम करने की मुद्रा में मुस्तैद हो जाओ'। 15 मिनट पूरे होते ही फिर हूटर बजेगा और कन्वेयर बेल्ट शुरू हो जाएगी। यदि कोई मज़दूर 1 सेकंड भी लेट है, तो वह रुकेगी और एचआर मेनेजर नोट करेगा कि किस मज़दूर की वज़ह से और कितने वक़्त तक काम रुका। उसके लिए दंड का भी प्रावधान है। महिलाओं की शारीरिक विशिष्टता की वज़ह से, उन्हें पेशाब करने में ज्यादा वक़्त लगता है, लेकिन उससे 'सुजुकी संस्कृति' को क्या मतलब!!

इस अमानवीय और ज़िल्लत भरी 'सुजुकी संस्कृति' का नतीजा था, कि मज़दूरों में असंतोष पैदा हुआ। उन्होंने शिकायतें को मालिकों ने नज़रंदाज़ किया। मज़दूरों का आक्रोश बढ़ा, मज़दूरों ने यूनियन बनाने की कोशिश की। प्रबंधन ने अनुमति नहीं दी। हेंकड़ी और हठधर्मिता ज़ारी रखी। मज़दूरों के आक्रोश ने उफान मारा। मज़दूरों और प्रबंधन तथा सुरक्षा गार्ड के नाम पर भर्ती बांउसर्स में, हाथापाई की घटनाएँ होने लगीं। प्रबंधन, उसके बाद भी, संवेदनहीन, अड़ियल टट्टू बना रहा, मज़दूरों को सस्पेंड करने लगा जिसके फलस्वरूप मज़दूरों के क्रोध ने उबाल मारा। जुलाई 18, 2012 को, मानेसर प्लांट में, अक्सर होने वाली हाथापाई, मार-कुटाई तक पहुंच गइ। तब ही, किसी ने प्लांट में आग लगा दी, जिसमें एक मेनेजर की जलकर मौत हो गई। आग, मज़दूरों ने लगाई, ये तथ्य अदालत में भी सत्यापित नहीं हुआ, लेकिन प्रबंधन ने 2,000 ठेका मज़दूर, 100 अपरेंटिस और 546 स्थाई मज़दूरों को, तुरंत नोकरी से बर्खास्त कर, एफ आई आर दर्ज़ कर दी। कंपनी मालिक और हरियाणा सरकार ने पानी की तरह पैसा बहाया, केटीएस तुलसी जैसे सुप्रीम कोर्ट के कई बड़े वकीलों को खड़ा किया, जो एक तारीख के 50-50 लाख रु फ़ीस लेते थे, जिससे मज़दूरों की ज़मानतें ना हो पाएं और उन्हें बड़ी से बड़ी सज़ा मिलें।

ज़िला अदालत, गुडगाँव का फैसला 18 मार्च 2017 को आया, जिसमें 13 नेतृत्वकारी मज़दूरों को क़त्ल का क़सूरवार ठहराते हुए उम्र क़ैद, 4 मज़दूरों को 5-5 साल और 17 मज़दूरों को, जितने दिन वे सज़ा सुनाने की तारीख तक जेल में रहे, उतने दिन की सज़ा सुनाई गई। बाक़ी सभी मज़दूर बा-इज्ज़त बरी हुए। 2 मज़दूरों की मुक़दमे के दौरान ही मौत हो गई और बाक़ी 11 मज़दूर, 10 साल की सज़ा काटकर पिछले साल ज़मानत पर रिहा हुए हैं। साथ ही 64 मज़दूर ऐसे हैं जिनके विरुद्ध गैर-ज़मानती वारंट निकले हुए हैं और जो अभी तक गिरफ्तार नहीं हुए हैं। अपनी जान बचाते कहीं भटक रहे हैं क्योंकि उन्हें मालूम है कि इतने बड़े सरमाएदार के सामने और जिसके साथ सारी सरकारें खड़ी हैं, अदालत से उन्हें न्याय नहीं मिल पाएगा। एक व्यक्ति की मौत के लिए, जो जलकर मरा, जिसे किसने मारा, अदालत में तय नहीं हो पाया; कुल 429 लोगों को सज़ा!! कहीं देखा है, ऐसा अदालती न्याय??यही नहीं, अदालत ने, जिन 112 मज़दूरों को बा-इज्ज़त बरी किया था, उन्हें भी आज तक काम पर नहीं लिया गया है। कंपनी मालिक कहते हैं कि इन्होने भी कंपनी का भरोसा खो दिया है!! मतलब, कंपनी मैनेजमेंट अदालत से भी ऊपर हो गया।

इस मुक़दमे के दौरान, आपराधिक घटना की जाँच के लिए एक विशेष जाँच कमेटी (एसआईटी) भी गठित हुई थी जिसने 546 पक्के, नियमित मज़दूरों में से 426 को बिलकुल बे-क़सूर पाया था। एक बात और बहुत महत्वपूर्ण है मारुति-सुजुकी के मानेसर प्लांट में, 18 जुलाई 2012 को हिंसा भड़कने के पीछे कौन से कारण थे, ये सबसे अहम पहलू, उस विशेष जाँच कमेटी की जाँच के दायरे में क्यों नहीं था?

बड़ी-बड़ी कंपनियां कैसे, औद्योगिक विवादों को आपराधिक विवादों में बदलकर, मज़दूरों को कैसे भूखों मार सकती हैं, उन्हें तबाह कर सकती हैं, मारुति-सुजुकी का ये मुक़दमा, एक ज्वलंत उदहारण है. ये मुक़दमा, 4 मई, 1886 को शिकागो के 'हे मार्केट' की उस ऐतिहासिक घटना की भी याद ताज़ा कर देता है जिसमें 8 बेक़सूर मज़दूरों को फंसाया गया था, जिसे याद करते हुए, मज़दूर सारी दुनिया में हर साल 'मई दिवस' मनाते हैं।

कौन है क़सूरवार

कौन है क़सूरवार? सच में, अगर न्याय होना है तो सज़ा किसे मिले? असली गुनहगार है, सरमाएदारों की मुनाफ़े की वो हवश, जो कभी शांत ही नहीं होती. असल गुनहगार है, वह निज़ाम, जो मुनाफ़े की इस चक्की को टिकाए रखना चाहता है. मज़दूरों को उस भट्टी में झोंक दिया जाता है. मज़दूर, अगर कुलबुलाए, तो, पुलिस-अदालत का डंडा उनके मुंह में ठूंस दिया जाता है. मारुती-सुजुकी के एचआर मेनेजर की मौत की ज़िम्मेदार, वही घृणित 'सुजुकी संस्कृति' है, जो इन्सान को मशीन का निर्जीव पुर्ज़ा बना देती है. क्या ओसामू सुजुकी को उसके किए की सज़ा मिलेगी, उसे जेल में डाला जाएगा? अब तक वह ना जाने कितने मज़दूरों की जान ले चुका है, जाने कितनों को अवसादग्रस्त, बीमार कर चुका होगा, क्या इस जघन्य अपराध के लिए, उसे फांसी पर लटकाया जाएगा? उसे और उसके बिरादरों को तो, सरकारें तमगों से नवाज़कर धन्य महसूस करती हैं. अगर असली गुनहगार को सज़ा नहीं मिली, तो न्याय कहाँ हुआ? न्याय कैसे होगा?

क्या इस निज़ाम में मज़दूरों को न्याय संभव है? 112 मज़दूर जो अभी तक काम पर नहीं लिए गए हैं, उन्हें किस अपराध की सज़ा दी जा रही है? उन्हें तो किसी अदालत ने भी क़सूरवार नहीं ठहराया. 'हमें तुरंत काम पर लो', वे लगातार आंदोलन कर रहे हैं. लेकिन 'सुजुकी संस्कृति' को कोई फ़र्क नहीं पड़ रहा. उसे तो छोडिए, सरकार को, श्रम अदालतों को भी कोई फ़र्क नहीं पड़ रहा. भूखे मज़दूर, अगर अपने बच्चों को भूखा देखकर, किसी दिन अपने गुस्से पर नियंत्रण ना रख पाएं तो? क़सूरवार कौन होगा? फिर वही 'न्याय' होगा??

'Japanese Management Indian Resistance', मज़दूर आंदोलन कार्यकर्ताओं के पढ़ने लायक़ किताब है, ज्यादा मंहगी भी नहीं, 410 रु में उपलब्ध है. उम्मीद है, इसका हिंदी अनुवाद भी शीघ्र ही प्रकाशित होगा, जिससे आम मज़दूर भी इसे पढ़ सकें. ऐसी क़िताबों की बहुत ज़रूरत है.